गोकरुणानिधि

ओ३म् नमो नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय ।।

भूमिका

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

य० अ० ३६ । मं० ८ ।।

तनोतु सर्वेश्वर उत्तमम्बलं गवादिरक्षं विविधं दयेरितः ।
अशेषविघ्नानि निहत्य नः प्रभूः सहायकारी विदधातु गोहितम् ।।१।।
ये गोसुखं सम्यगुशन्ति धीरास्ते धर्म्मजं सौख्यमथाददन्ते ।
क्रूरा नराः पापरता न यन्ति प्रज्ञाविहीनाः पशुहिंसकास्तत् ।।२।।

वे धर्मात्मा विद्वान् लोग धन्य हैं, जो ईश्वर के गुण, कर्म्म, स्वभाव, अभिप्राय, सृष्टि-क्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण और आप्तों के आचार से अविरुद्ध चलके सब संसार को सुख पहुंचाते हैं । और शोक है उन पर जो कि इनसे विरुद्ध स्वार्थी दयाहीन होकर जगत् में हानि करने के लिये वर्त्तमान हैं । पूजनीय जन वे हैं कि जो अपनी हानि होती तो भी सब के हित के करने में अपना तन, मन, धन लगाते हैं । और तिरस्करणीय वे हैं जो अपने ही लाभ में सन्तुष्ट रहकर सबके सुखों का नाश करते हैं ।

ऐसा सृष्टि में कौन मनुष्य होगा जो सुख और दुःख को स्वयं न मानता हो ? क्या ऐसा कोई भी मनुष्य है कि जिसके गले को काटे वा रक्षा करे, वह दुःख और सुख का अनुभव न करे ? जब सब को लाभ और सुख ही में प्रसन्नता है, तो विना अपराध किसी प्राणी का प्राणवियोग करके अपना पोषण करना यह सत्पुरुषों के सामने निन्दित कर्म क्यों न होवे ? सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर इस सृष्टि में मनुष्यों के आत्माओं में अपनी दया और न्याय को प्रकाशित करे कि जिससे ये सब दया और न्याययुक्त होकर सर्वदा सर्वोपकारक काम करें और स्वार्थपन से पक्षपातयुक्त होकर कृपापात्र गाय आदि पशुओं का विनाश न करें कि जिससे दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रियाओं की सिद्धि से युक्त होकर सब मनुष्य आनंद में रहें ।

इस ग्रन्थ में जो कुछ अधिक, न्यून वा अयुक्त लेख हुआ हो उसको बुद्धिमान् लोग इस ग्रन्थ के तात्पर्य के अनुकूल कर लेवें । धार्मिक विद्वानों की यही योग्यता है कि वक्ता के वचन और ग्रन्थकर्त्ता के अभिप्राय के अनुसार ही समझ लेते हैं । यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है, जिससे गो आदि पशु जहां तक सामर्थ्य हो बचाये जावें और उनके बचाने से दूध घी और खेती के बढ़ने से सब को सुख बढ़ता रहे । परमात्मा कृपा करे कि यह अभीष्ट शीघ्र सिद्ध हो ।

इस ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं—एक समीक्षा, दूसरा नियम और तीसरा उप-नियम । इन को ध्यान दे पक्षपात छोड़ विचार के राजा तथा प्रजा यथावत् उपयोग में लावें, कि जिससे दोनों के लिये सुख बढ़ता ही रहे ।

।। इति भूमिका ।।

।। ओ३म् ।।

अथ गोकरुणानिधिः

अथ समीक्षा-प्रकरणम्

गोकृष्यादिरक्षिणीसभा

इस सभा का नाम 'गोकृष्यादिरक्षिणी' इसलिये रक्खा है जिससे गवादि पशु और कृष्यादि कर्म्मों की रक्षा और वृद्धि होकर सब प्रकार के उत्तम सुख मनुष्यादि प्राणियों को प्राप्त होते हैं, और इस के विना निम्नलिखित सुख कभी नहीं प्राप्त हो सकते।

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने इस सृष्टि में जो-जो पदार्थ बनाये हैं, वे निष्प्रयोजन नहीं, किन्तु एक-एक वस्तु अनेक-अनेक प्रयोजन के लिये रची है। इसलिये उन से वे ही प्रयोजन लेना न्याय अन्यथा अन्याय है। देखिये जिसलिये यह नेत्र बनाया है, इससे वही कार्य्य लेना सब को उचित होता है, न कि उससे पूर्ण प्रयोजन न लेकर बीच ही में वह नष्ट कर दिया जावे। क्या जिन-जिन प्रयोजनों के लिये परमात्मा ने जो-जो पदार्थ बनाये हैं, उन-उन से वे-वे प्रयोजन न लेकर उनको प्रथम ही विनष्ट कर देना सत्पुरुषों के विचार में बुरा कर्म नहीं है? पक्षपात छोड़ कर देखिये, गाय आदि पशु और कृषि आदि कर्मों से सब संसार को असंख्य सुख होते हैं वा नहीं? जैसे दो और दो चार, वैसे ही सत्यविद्या से जो-जो विषय जाने जाते वे अन्यथा कभी नहीं हो सकते।

जो एक गाय न्यून से न्यून दो सेर दूध देती हो, और दूसरी बीस सेर, तो प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कोई शंका नहीं। इस हिसाब से एक मास में ८।ऽ सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम ६ महीने, और दूसरी अधिक से अधिक १८ महीने तक दूध देती है, तो दोनों का मध्यभाग प्रत्येक गाय के दूध देने में बारह महीने होते हैं। इस हिसाब से बारह महीनों का दूध ९९ऽ निन्नानवे मन होता है। इतने दूध को औटा कर प्रति सेर में छटाँक चावल और डेढ़ छटांक चीनी डाल कर खीर बना खावें, तो प्रत्येक पुरुष के लिए दो सेर दूध की खीर पुष्कल होती है। क्योंकि यह भी एक मध्यभाग की गिनती है, अर्थात् कोई दो सेर दूध की खीर से अधिक खा गया और कोई न्यून, इस हिसाब से एक प्रसूता गाय के दूध से १९८० एक हजार नवसौ अस्सी मनुष्य एक वार तृप्त होते हैं। गाय न्यून से न्यून ८ और अधिक से अधिक १८ बार ब्याती है, इसका मध्यभाग तेरह वार आया, तो २५७४० पच्चीस हज़ार सातसौ चालीस मनुष्य एक गाय के जन्म भर के दूधमात्र से एक वार तृप्त हो सकते हैं।

इस गाय के एक पीढ़ी में छः बछियां और सात बछड़े हुये, इनमें से एक की मृत्यु रोगादि से होना सम्भव है, तो भी बारह रहे। उन छः बछियाओं के दूधमात्र से उक्त प्रकार १५४४४० एक लाख चौवन हज़ार चारसौ चालीस मनुष्यों का पालन

हो सकता है अब रहे छः बैल, उन में एक जोड़ी से दोनों साख में २००ऽ दोसौ मन अन्न उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार तीन जोड़ी ६००ऽ छः सौ मन अन्न उत्पन्न कर सकती हैं, और उनके कार्य का मध्यभाग आठ वर्ष है। इस हिसाब से ४८००ऽ चार हज़ार आठसौ मन अन्न उत्पन्न करने की शक्ति एक जन्म में तीनों जोड़ी की। ४८००ऽ इतने अन्न से प्रत्येक मनुष्य का तीन पाव अन्न भोजन में गिनें, तो २५६००० दो लाख छप्पन हज़ार मनुष्यों का एक वार भोजन होता है। दूध और अन्न को मिला कर देखने से निश्चय है कि ४१०४४० चार लाख दश हज़ार चारसौ चालीस मनुष्यों का पालन एक वार के भोजन से होता है। अब छः गाय की पीढ़ी परपीढ़ियों का हिसाब लगाकर देखा जावे तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है। और इसके मांस से अनुमान है कि केवल अस्सी मांसाहारी मनुष्य एक वार तृप्त हो सकते हैं। देखो, तुच्छ लाभ के लिए लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं ?

यद्यपि गाय के दूध से भैंस का दूध कुछ अधिक और बैलों से भैंसा कुछ न्यून लाभ पहुँचाता है, तथापि जितना गाय के दूध और बैलों के उपयोग से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैंसियों के दूध और भैंसों से नहीं। क्योंकि जितने आरोग्यकारक और बुद्धिवर्द्धक आदि गुण गाय के दूध और बैलों में होते हैं, उतने भैंस के दूध और भैंस आदि में नहीं हो सकते। इसलिये आर्यों ने गाय सर्वोत्तम मानी है।

और ऊंटनी का दूध गाय और भैंस के दूध से भी अधिक होता है, तो भी इन का दूध गाय के सदृश नहीं। ऊंट और ऊंटनी के गुण भार उठाकर शीघ्र पहुंचाने के लिये प्रशंसनीय हैं।

अब एक बकरी कम से कम एक और अधिक से अधिक पांच सेर दूध देती है, इसका मध्यभाग प्रत्येक बकरी से तीन सेर दूध होता है। और न्यून से न्यून तीन महीने और अधिक से अधिक पांच महीने तक दूध देती है, तो प्रत्येक बकरी के दूध देने में मध्यभाग चार महीने हुए। वह एक मास में २।ऽ सवा दो मन और चार मास में ९ऽ नव मन होता है। पूर्वोक्त प्रकारानुसार इस दूध से १८० एक सौ अस्सी मनुष्यों की तृप्ति होती है। और एक बकरी एक वर्ष में दो वार ब्याती है। इस हिसाब से एक वर्ष में एक बकरी के दूध के एक वार भोजन से ३६० तीनसौ साठ मनुष्यों की तृप्ति होती है। कोई बकरी न्यून से न्यून चार वर्ष और कोई अधिक से अधिक ८ आठ वर्ष तक ब्याती है, इसका मध्य भाग ६ छः वर्ष हुआ, तो जन्मभर के दूध से २१६० दो हज़ार एक सौ साठ मनुष्यों का एक वार के भोजन से पालन होता है।

अब उसके बच्चा बच्ची मध्यभाग से २४ चौबीस हुए, क्योंकि कोई न्यून से न्यून और कोई अधिक से अधिक तीन बच्चों से ब्याती है। उनमें से दो का अल्पमृत्यु समझो, रहे २२ बाईस, उनमें से १२ बकरियों के दूध से २५९२० पच्चीस हज़ार नवसौ बीस मनुष्यों का एक दिन पालन होता है। उसकी पीढ़ी परपीढ़ी के हिसाब लगाने से असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है। और बकरे भी बोझ उठाने आदि प्रयोजनों में आते हैं, और बकरा बकरी और भेड़ भेड़ी के ऊन के वस्त्रों से मनुष्यों को बड़े-बड़े सुख

लाभ होते हैं। यद्यपि भेड़ी का दूध बकरी के दूध से कुछ कम होता है, तथापि बकरी के दूध से उसके दूध में बल और घृत अधिक होता है। इसी प्रकार अन्य दूध देनेवाले पशुओं के दूध से भी अनेक प्रकार के सुख लाभ होते हैं।

जैसे ऊंट ऊंटनी से लाभ होते हैं, वैसे ही घोड़े घोड़ी और हाथी आदि से अधिक कार्य सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार सुअर, कुत्ता, मुर्गा, मुर्गी और मोर आदि पक्षियों से भी अनेक उपकार होते हैं। जो पुरुष हरिण और सिंह आदि पशु और मोर आदि पक्षियों से भी उपकार लेना चाहें तो ले सकते हैं, परन्तु सब का पालन उत्तरोत्तर समयानुकूल होवेगा। वर्तमान में परमोपकारक गो की रक्षा में मुख्य तात्पर्य है। दो ही प्रकार से मनुष्य आदि की प्राणरक्षा, जीवन, सुख, विद्या, बल और पुरुषार्थ आदि की वृद्धि होती है – एक अन्नपान, दूसरा आच्छादन। इनमें से प्रथम के विना मनुष्यादि का सर्वथा प्रलय और दूसरे के विना अनेक प्रकार की पीड़ा होती है।

देखिये, जो पशु निःसार घास तृण पत्ते फल फूल आदि खावें और सार दूध आदि अमृतरूपी रत्न देवें, हल गाड़ी में चल के अनेकविध अन्न आदि उत्पन्न कर सबके बुद्धि बल पराक्रम को बढ़ा के नीरोगता करे, पुत्र पुत्री और मित्र आदि के समान पुरुषों के साथ विश्वास और प्रेम करें, जहां बांधे वहां बन्धे रहें, जिधर चलावें उधर चलें, जहां से हटावें वहां से हट जावें, देखने और बुलाने पर समीप चले आवें, जब कभी व्याघ्रादि पशु वा मारनेवाले को देखें अपनी रक्षा के लिये पालन करनेवाले के समीप दौड़ कर आवें कि यह हमारी रक्षा करेगा। जिनके मरे पर चमड़ा भी कंटक आदि से रक्षा करे, जंगल में चर के अपने बच्चे और स्वामी के लिये दूध देने को नियत स्थान पर नियत समय चले आवें, अपने स्वामी की रक्षा के लिये तन मन लगावें, जिनका सर्वस्व राजा और प्रजा आदि मनुष्यों के सुख के लिये है, इत्यादि शुभगुणयुक्त सुख-कारक पशुओं के गले छुरों से काट कर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दुःख देनेवाले और पापीजन होंगे ?

इसीलिये यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परामात्मा की आज्ञा है कि—'अघ्न्याः यजमानस्य पशून् पाहि' हे पुरुष ! तू इन पशुओं को कभी मत मार, और यजमान अर्थात् सब के सुख देनेवाले जनों के सम्बन्धी पशुओं की रक्षा कर, जिनसे तेरी भी पूरी रक्षा होवे। और इसीलिये ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे, और अब भी समझते हैं। और इन की रक्षा में अन्न भी महगा नहीं होता, क्योंकि दूध आदि के अधिक होने से दरिद्री को भी खान पान में मिलने पर न्यून ही अन्न खाया जाता है, और अन्न के कम खाने से मल भी कम होता है। मल के न्यून होने से दुर्गन्ध भी न्यून होता है, दुर्गन्ध के स्वल्प होने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि भी विशेष होती है, उससे रोगों की न्यूनता होने से सबको सुख बढ़ता है।

इनसे यह ठीक है कि गो आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है, क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं, तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि

कार्यों की भी घटती होती है। देखो, इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु ७०० सातसौ वर्ष के पूर्व मिलते थे, उतना दूध घी और बैल आदि पशु इस समय दशगुणे मूल्य से भी नहीं मिल सकते। क्योंकि ७०० सातसौ वर्ष के पीछे इस देश में गवादि पशुओं को मारनेवाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य बहुत आ बसे हैं। वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड़ मांस तक भी नहीं छोड़ते, तो 'नष्टे मूले नैव पत्रं न पुष्पम्' जब कारण का नाश करदे तो कार्य नष्ट क्यों न हो जावे? हे मांसाहारियो! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं? हे परमेश्वर! तू क्यों न इन पशुओं पर, जो कि विना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है? क्या इनके लिये तेरी न्याय-सभा बन्द होगई है? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता, और उनको पुकार नहीं सुनता। क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।

अथ समीक्षायां हिंसक-रक्षक-संवादः—

हिंसक—ईश्वर ने सब पशु आदि सृष्टि मनुष्य के लिये रची है, और मनुष्य अपनी भक्ति के लिये। इसलिये मांस खाने में दोष नहीं हो सकता।

रक्षक—भाई! सुनो, तुम्हारे शरीर को जिस ईश्वर ने बनाया है, क्या उसी ने पशु आदि के शरीर नहीं बनाये हैं? जो तुम कहो कि पशु आदि हमारे खाने को बनाये हैं, तो हम कह सकते हैं कि हिंसक पशुओं के लिये तुमको उसने रचा है, क्योंकि जैसे तुम्हारा चित्त उनके मांस पर चलता है, वैसे ही सिंह, गृध्र आदि का चित्त भी तुम्हारे मांस, खाने पर चलता है, तो उन के लिये तुम क्यों नहीं?

हिं०—देखो, ईश्वर ने पुरुषों के दांत कैसे पैने मांसाहारी पशुओं के समान बनाये हैं। इससे हम जानते हैं कि मनुष्यों को मांस खाना उचित है।

र०—जिन व्याघ्रादि पशुओं के दांत के दृष्टान्त से अपना पक्ष सिद्ध किया चाहते हो, क्या तुम भी उनके तुल्य ही हो? देखो, तुम्हारी मनुष्य जाति उनकी पशु जाति, तुम्हारे दो पग और उनके चार, तुम विद्या पढ़ कर सत्यासत्य का विवेक कर सकते हो वे नहीं। और यह तुम्हारा दृष्टान्त भी युक्त नहीं, क्योंकि जो दांत का दृष्टान्त लेते हो तो बन्दर के दांतों का दृष्टान्त क्यों नहीं लेते? देखो बन्दरों के दांत सिंह और बिल्ली आदि के समान हैं और वे मांस नहीं खाते। मनुष्य और बन्दर की आकृति भी बहुतसी मिलती है, जैसे मनुष्यों के हाथ पग और नख आदि होते हैं, वैसे ही बन्दरों के भी हैं। इसलिये परमेश्वर ने मनुष्यों को दृष्टान्त से उपदेश किया है कि जैसे बन्दर मांस कभी नहीं खाते और फलादि खाकर निर्वाह करते हैं, वैसे तुम भी किया करो। जैसा बन्दरों का दृष्टान्त सांगोपांग मनुष्यों के साथ घटता है, वैसा अन्य किसी का नहीं। इसलिये मनुष्यों को अति उचित है कि मांस सर्वथा छोड़ देवें।

हिं०—देखो, जो मांसाहारी पशु और मनुष्य हैं वे बलवान् और जो मांस नहीं खाते हैं वे निर्बल हैं, इससे मांस खाना चाहिये।

र०—क्यों अल्प समझ की बातें मानकर कुछ भी विचार नहीं करते। देखो, सिंह मांस खाता और सुअर वा अरणा भैंसा मांस कभी नहीं खाता, परन्तु जो सिंह बहुत मनुष्यों के समुदाय में गिरे तो एक या दो को मारता और एक दो गोली या तलवार के प्रहार से मर भी जाता है, और जब जंगली सुअर वा अरणा भैंसा जिस प्राणिसमुदाय में गिरता है, तब उन अनेक सवारों और मनुष्यों को मारता और अनेक गोली बरछी तथा तलवार आदि के प्रहार आदि से भी शीघ्र नहीं गिरता, और सिंह उससे डरके अलग सटक जाता है, और वह सिंह से नहीं डरता।

और जो प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखना चाहो तो एक मांसाहारी का एक दूध घी और अन्नाहारी मथुरा के मल्ल चौबे से बाहुयुद्ध हो, तो अनुमान है कि चौबा मांसाहारी को पटक उसकी छाती पर चढ़ ही बैठेगा। पुन: परीक्षा होगी कि किस-किस के खाने से बल न्यून और अधिक होता है। भला, तनिक विचार करो कि छिलकों के खाने से अधिक बल होता है अथवा रस और जो सार है उसके खाने से? मांस छिलके के समान और दूध घी सार रस के तुल्य है, इसको जो युक्तिपूर्वक खावे तो मांस से अधिक गुण और बलकारी होता है, फिर मांस का खाना व्यर्थ और हानिकारक, अन्याय, अधर्म और दुष्ट कर्म क्यों नहीं?

हिं०—जिस देश में सिवाय मांस के अन्य कुछ नहीं मिलता, वहां वा आपत्काल में अथवा रोगनिवृत्ति के लिए मांस खाने में दोष नहीं होता।

र०—यह आपका कहना व्यर्थ है, क्योंकि जहां मनुष्य रहते हैं, वहां पृथिवी अवश्य होती है। जहां पृथिवी है वहां खेती वा फल फूल आदि होते हैं, और जहां कुछ भी नहीं होता, वहां मनुष्य भी नहीं रह सकते। और जहां ऊसर भूमि है, मिष्ट जल और फलाहारादि के न होने से मनुष्यों का रहना भी दुर्घट है। और आपत्काल में भी अन्य उपायों से निर्वाह कर सकते हैं, जैसे मांस के न खाने वाले करते हैं। और विना मांस के रोगों का निवारण भी ओषधियों से यथावत् होता है, इसलिये मांस खाना अच्छा नहीं।

हिं०—जो कोई भी मांस न खावे तो पशु इतने बढ़ जायें कि पृथिवी पर भी न समावें, और इसलिये ईश्वर ने उनकी उत्पत्ति भी अधिक की है, तो मांस क्यों न खाना चाहिये?

र०—वाह! वाह! यह बुद्धि का विपर्यास आपको मांसाहार ही से हुआ होगा। देखो, मनुष्य का मांस कोई नहीं खाता, पुन: क्यों न बढ़ गये। और इनकी अधिक उत्पत्ति इसलिये है कि एक मनुष्य के पालन व्यवहार में अनेक पशुओं की अपेक्षा है। इसलिये ईश्वर ने उनको अधिक उत्पन्न किया है।

हिं०—ये जितने उत्तर किये, वे सब व्यवहारसम्बन्धी हैं, परन्तु पशुओं को मार के मांस खाने में अधर्म तो नहीं होता, और जो होता है तो तुम को होता होगा, क्योंकि तुम्हारे मत में निषेध है। इसलिये तुम मत खाओ और हम खावें, क्योंकि हमारे मत में मांस खाना अधर्म नहीं है।

र०—हम तुम से पूछते हैं कि धर्म और अधर्म व्यवहार ही में होते हैं वा अन्यत्र ? तुम कभी सिद्ध न कर सकोगे कि व्यवहार से भिन्न धर्माधर्म होते हैं। जिस जिस व्यवहार से दूसरों की हानि हो वह-वह 'अधर्म' और जिस-जिस व्यवहार से उपकार हो, वह-वह 'धर्म' कहाता है। तो लाखों के सुख लाभकारक पशुओं का नाश करना अधर्म और उनकी रक्षा से लाखों को सुख पहुँचाना धर्म क्यों नहीं मानते ? देखो, चोरी जारी आदि कर्म इसलिये अधर्म हैं कि इनसे दूसरे की हानि होती है। नहीं तो जो जो प्रयोजन धनादि से उनके स्वामी सिद्ध करते हैं, वे ही प्रयोजन उन चोरादि के भी सिद्ध होते हैं। इसलिये यह निश्चित है कि जो जो जगत् में हानिकारक हैं वे वे 'अधर्म', और जो जो परोपकारी हैं वे वे 'धर्म' कहाते हैं।

जब एक आदमी की हानि करने से चोरी आदि कर्म पाप में गिनते हो, तो गवादि पशुओं को मार के बहुतों की हानि करना महापाप क्यों नहीं ? देखो, मांसाहारी मनुष्यों में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं, किन्तु वे स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने ही में सदा रहते हैं। जब मांसाहारी किसी पुष्ट पशु को देखता है, तभी उसकी इच्छा होती है कि इसमें मांस अधिक है, मारकर खाऊं तो अच्छा हो। और जब मांस का न खानेवाला उसको देखता है तो प्रसन्न होता है कि यह पशु आनन्द में है। जैसे सिंह आदि मांसाहारी पशु किसी का उपकार तो नहीं करते, किन्तु अपने स्वार्थ के लिये दूसरे का प्राण भी ले मांस खाकर अति प्रसन्न होते हैं, वैसे ही मांसाहारी मनुष्य भी होते हैं। इसलिये मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं।

हिं०—अच्छा जो यही बात है तो जब तक पशु काम में आवें तब तक उनका मांस न खाना चाहिये, जब बूढ़े हो जावें वा मर जावें तब खाने में कुछ भी दोष नहीं।

र०—जैसे दोष उपकार करनेवाले माता पिता आदि के वृद्धावस्था में मारने और उनके मांस खाने में हैं, वैसे उन पशुओं की सेवा न कर मार के मांस खाने में है। और जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे तो उसका स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी न बच सकेगा। इसलिये किसी अवस्था में मांस न खाना चाहिये।

हिं—जिन पशुओं और पक्षियों अर्थात् जंगल में रहनेवालों से उपकार किसी का नहीं होता और हानि होती है, उनका मांस खाना वा नहीं ?

र०—न खाना चाहिये, क्योंकि वे भी उपकार में आ सकते हैं। देखो, १०० सौ भङ्गी जितनी शुद्धि करते हैं, उनसे अधिक एक सुअर वा मुर्गा अथवा मोर आदि पक्षी सर्प आदि की निवृत्ति करने से पवित्रता और अनेक उपकार करते हैं। और जैसे मनुष्यों का खान पान दूसरे के खाने पीने से उनका जितना अनुपकार होता है, वैसे जंगली मांसाहारी का अन्न जंगली पशु और पक्षी हैं। और जो विद्या वा विचार से सिंह आदि वनस्थ पशु और पक्षियों से उपकार लेवें तो अनेक प्रकार का लाभ उनसे भी हो सकता है। इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिये।

भला, जिनके दूध आदि खाने पीने में आते हैं, वे माता पिता के समान माननीय क्यों न होने चाहियें ? ईश्वर की सृष्टि से भी विदित होता है कि मनुष्यों से पशु और पक्षी आदि अधिक रहने से कल्याण है । क्योंकि ईश्वर ने मनुष्यों के खाने पीने के पदार्थों से भी पशु पक्षियों के खाने पीने के पदार्थ घास वृक्ष फूल फलादि अधिक रचे हैं, और वे विना जोते बोए सींचे पृथिवी पर स्वयं उत्पन्न होते हैं । और वहां वृष्टि भी करता है इसलिये समझ लीजिये कि ईश्वर का अभिप्राय उनके मारने में नहीं किन्तु रक्षा करने में है ।

हिं—जो मनुष्य पशु को मारके मांस खावें उन को पाप होता है, और जो बिकता मांस मूल्य से ले वा भैरव, चामुण्डा, दुर्गा, जखैया, वाममार्ग अथवा यज्ञ आदि की रीति से चढ़ा समर्पण कर खावें तो उनको पाप नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे विधि करके खाते हैं ।

र०—जो कोई मांस न खावे, न उपदेश और न अनुमति आदि देवे, तो पशु आदि कभी न मारे जावें । क्योंकि इस व्यवहार में बहुकावट लाभ और विक्री न हो, तो प्राणियों का मारना बन्द ही हो जावे । इस में प्रमाण भी है:—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ॥
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

मनु० अ० ५ । श्लो० ५१ ॥

अर्थ—अनुमति = मारने की सलाह देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिये और बेचने, मांस के पकाने, परसने और खानेवाले ८ आठ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पापकारी हैं ॥

और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना मारना वा मरवाना महापापकर्म्म है । इसलिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी ।

मद्य भी मांस खाने का ही कारण है, इसलिए यहां संक्षेप से लिखते हैं:—

प्रमत्त—कहोजी! मांस तो छूटा सो छूटा परन्तु मद्य पीने में तो कोई भी दोष नहीं ?

शान्त—मद्य पीने में भी वैसे ही दोष हैं जैसे कि मांस खाने में । मनुष्य मद्य पीने से नशे के कारण नष्टबुद्धि होकर अकर्त्तव्य कर लेता और कर्त्तव्य को छोड़ देता है, न्याय का अन्याय और अन्याय का न्याय आदि विपरीत कर्म करता है । और मद्य की उत्पत्ति विकृत पदार्थों से होती है, और वह मांसाहारी अवश्य हो जाता है, इसलिये इसके पीने से आत्मा में विकार उत्पन्न होते हैं । और जो मद्य पीता है, वह विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर उन दोषों में फंस कर अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत् आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि कर्मों में प्रवृत्त होकर अपने मनुष्यजन्म को व्यर्थ कर देता है । इसलिये नशा अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन भी न करना चाहिये ।

जैसा मद्य है वैसे भांग आदि पदार्थ भी मादक हैं, इसलिये इनका भी सेवन कभी न करे, क्योंकि ये भी बुद्धि का नाश करके प्रमाद, आलस्य और हिंसा आदि में मनुष्य को लगा देते हैं। इसीलिये मद्यपान के समान इनका भी सर्वथा निषेध ही है।

इससे हे धार्मिक सज्जन लोगो ! आप इन पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते ? हाय !! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिये ले जाते हैं, तब वे अनाथ तुम हमको देख के राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं—कि देखो ! हमको विना अपराध बुरे हाल से मारते हैं, और हम रक्षा करने तथा मारनेवालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिये उपस्थित रहना चाहते हैं, और मारे जाना नहीं चाहते, देखो, हम लोगों का सर्वस्व परोपकार के लिये है, और हम इसीलिए पुकारते हैं कि हमको आप लोग बचावें, हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते, और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हममें से किसी को कोई मारता, तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारनेवालों को न्यायव्यवस्था से फांसी पर न चढ़वा देते ? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं, क्योंकि कोई भी हमको बचाने में उद्यत नहीं होता। और जो कोई होता है तो उससे मांसाहारी द्वेष करते हैं।

अस्तु, वे स्वार्थ के लिये द्वेष करो तो करो, क्योंकि 'स्वार्थी दोषं न पश्यति' जो स्वार्थ साधने में तत्पर है, वह अपने दोषों पर ध्यान नहीं देता, किन्तु दूसरों को हानि हो तो हो मुझको सुख होना चाहिये, परन्तु जो उपकारी हैं वे इसके बचाने में अत्यन्त पुरुषार्थ करें, जैसा कि आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज तक वेदोक्त रीति से प्रशंसनीय कर्म करते आये हैं। वैसे ही सब भूगोलस्थ सज्जन मनुष्यों को करना उचित है।

धन्य है आर्यावर्त्त देशवासी आर्य लोगों को कि जिन्होंने ईश्वर के सृष्टिक्रम के अनुसार परोपकार ही में अपना तन, मन, धन लगाया और लगाते हैं। इसीलिये आर्यावर्त्तीय राजा, महाराजा, प्रधान और धनाढ्य लोग आधी पृथिवी में जंगल रखते थे कि जिससे पशु और पक्षियों की रक्षा होकर ओषधियों के सार दूध आदि पवित्र पदार्थ उत्पन्न हों, जिनके खाने पीने से आरोग्य, बुद्धि-बल, पराक्रम आदि सद्गुण बढ़ें। और वृक्षों के अधिक होने से वर्षा जल और वायु में आर्द्रता और शुद्धि अधिक होती है। पशु और पक्षी आदि के अधिक होने से खात भी अधिक होता है। परन्तु इस समय के मनुष्यों का इससे विपरीत व्यवहार है कि जंगलों को काट और कटवा डालना, पशुओं को मार और मरवा खाना और विष्ठा आदि का खात खेतों में डाल अथवा डलवा कर रोगों की वृद्धि करके संसार का अहित करना, स्वप्रयोजन साधना और परप्रयोजन पर ध्यान न देना; इत्यादि काम उलटे हैं।

'विषादप्यमृतङ् ग्राह्य' सत्पुरुषों का यही सिद्धान्त है कि विष से भी अमृत लेना। इसी प्रकार गाय आदि का मांस विषवत् महारोगकारी को छोड़ कर उनसे उत्पन्न हुए दूध आदि अमृत रोगनाशक हैं उनको लेना। अतएव इनकी रक्षा करके विषत्यागी और अमृतभोजी सब को होना चाहिये। सुनो बन्धुवर्गो ! तुम्हारा तन, मन, धन गाय

आदि की रक्षारूप परोपकार में न लगे तो किस काम का है ? देखो परमात्मा का स्वभाव कि जिसने सब विश्व और सब पदार्थ परोपकार ही के लिये रच रक्खे हैं, वैसे तुम भी अपना तन, मन, धन परोपकार ही के अर्पण करो।

बड़े आश्चर्य की बात है कि पशुओं को पीड़ा न होने के लिये न्यायपुस्तक में व्यवस्था भी लिखी है कि जो पशु दुर्बल और रोगी हों उनको कष्ट न दिया जावे और जितना बोझ सुखपूर्वक उठा सकें उतना ही उन पर धरा जावे। श्रीमती राजराजेश्वरी श्रीविक्टोरिया महाराणी का विज्ञापन भी प्रसिद्ध है कि इन अव्यक्तवाणी पशुओं को जो जो दुःख दिया जाता है वह न दिया जावे, तो क्या भला मार डालने से भी अधिक कोई दुःख होता है ? क्या फांसी से अधिक दुःख बन्दीगृह में होता है ? जिस किसी अपराधी से पूछा जाय कि तू फांसी चढ़ने में प्रसन्न है वा बंदीघर के रहने में ? तो वह स्पष्ट कहेगा कि फांसी में नहीं, किन्तु बन्दीघर के रहने में।

और जो कोई मनुष्य भोजन करने को उपस्थित हो उसके आगे से भोजन के पदार्थ उठा लिये जावें और उसको वहां से दूर किया जावे, तो क्या वह सुख मानेगा ? ऐसे ही आजकल के समय में कोई गाय आदि पशु सरकारी जंगल में जाकर घास और पत्ता जो कि उन्हीं के भोजनार्थ हैं विना महसूल दिये खावें वा खाने को जावें, तो बेचारे उन पशुओं और उनके स्वामियों की दुर्दशा होती है। जंगल में आग लग जावे तो कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु वे पशु न खाने पावें। हम कहते हैं कि किसी अति क्षुधातुर राजा वा राजपुरुष के समान आये चावल आदि वा डबलरोटी आदि छीनकर न खाने देवें और उनकी दुर्दशा की जावे, तो इनको दुःख विदित न होगा ? क्या वैसा ही उन पशु पक्षियों और उनके स्वामियों को न होता होगा ?

ध्यान देकर सुनिये कि जैसा दुःख सुख अपने को होता है, वैसा ही औरों को भी समझा कीजिये। और यह भी ध्यान में रखिये कि वे पशु आदि और उनके स्वामी तथा खेती आदि कर्म करनेवाले प्रजा के पशु आदि और मनुष्यों के अधिक पुरुषार्थ ही से राजा का ऐश्वर्य अधिक बढ़ता और न्यून से नष्ट हो जाता है, इसीलिये राजा प्रजा से कर लेता है कि उनकी रक्षा यथावत् करे, न कि राजा और प्रजा के जो सुख के कारण गाय आदि पशु हैं उनका नाश किया जावे। इसलिये आज तक जो हुआ सो हुआ, आंखें खोलकर सबके हानिकारक कर्मों को न कीजिये और न करने दीजिये। हां, हम लोगों का यही काम है कि आप लोगों को भलाई और बुराई के कामों को जता देवें, और आप लोगों का यही काम है कि पक्षपात छोड़ सबकी रक्षा और बढ़ती करने में तत्पर रहें। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर हम और आप पर पूर्ण कृपा करे कि जिससे हम और आप लोग विश्व के हानिकारक कर्मों को छोड़ सर्वोपकारक कर्मों को करके सब लोग आनन्द में रहें। इन सब बातों को सुन मत डालना किन्तु सुन रखना, इन अनाथ पशुओं के प्राणों को शीघ्र बचाना।

हे महाराजाधिराज जगदीश्वर ! जो इनको कोई न बचावे तो आप इनकी रक्षा करने और हम से कराने में शीघ्र उद्यत हूजिये ॥

इति समीक्षाप्रकरणम् ॥

इस सभा के नियम

१—सब विश्व को विविध सुख पहुँचाना इस सभा का मुख्य उद्देश्य है, किसी की हानि करना प्रयोजन नहीं।

२—जो जो पदार्थ सृष्टिक्रमानुकूल जिस जिस प्रकार से अधिक उपकार में आवे, उस उस से आप्ताभिप्रायानुसार यथायोग्य सर्वहित सिद्ध करना इस सभा का परम पुरुषार्थ है।

३—जिस जिस कर्म्म से बहुत हानि और थोड़ा लाभ हो, उस उस को सभा कर्त्तव्य नहीं समझती।

४—जो जो मनुष्य इस परमहितकारी कार्य में, तन, मन, धन से प्रयत्न और सहायता करे, वह वह इस सभा में प्रतिष्ठा के योग्य होवे।

५—जो कि यह कार्य्य सर्वहितकारी है, इसलिए यह सभा भूगोलस्थ मनुष्य जाति से सहायता की पूरी आशा रखती है।

६—जो जो सभा देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में परोपकार ही करना अभीष्ट रखती है, वह वह इस सभा की सहायकारिणी समझी जाती है।

७—जो जो जन राजनीति वा प्रजा के अभीष्ट से विरुद्ध, स्वार्थी, क्रोधी और अविद्यादि दोषों से प्रमत्त होकर राजा और प्रजा के लिये अनिष्ट कर्म्म करे वह वह इस सभा का सम्बन्धी न समझा जावे।

उपनियम

नाम

१—इस सभा का नाम "गोकृष्यादिरक्षिणी" है।

उद्देश्य

२—इस सभा के उद्देश्य वे ही हैं जो कि इसके नियमों में वर्णन किये गये हैं।

३—जो लोग इस सभा में नाम लिखाना चाहें* और इस के उद्देश्यानुकूल आचरण करना चाहें वे इस सभा में प्रविष्ट हो सकते हैं, परन्तु उनकी आयु १८ वर्ष से न्यून न हो। जो लोग इस सभा में प्रविष्ट हों वे 'गोरक्षकसभासद्' कहलावेंगे।

४—जिन का नाम इस सभा में सदाचार से एक वर्ष हो रहा हो और वे अपने आय का शतांश वा अधिक मासिक वा वार्षिक इस सभा को दें, वे

---

* इस सभा के नाम लिखाने के लिये मंत्री के पास इस प्रकार का पत्र भेजना चाहिये कि—'मैं प्रसन्नतापूर्वक इस सभा के उद्देश्यानुकूल, जो कि नियमों में वर्णन किये हैं, आचरण स्वीकार करता हूं। मेरा नाम इस सभा में लिख लीजिये।' परन्तु अन्तरङ्गसभा को अधिकार रहेगा कि किसी विशेष हेतु से उनका नाम इस सभा में लिखना स्वीकार न करे॥

'गोरक्षकसभासद्' हो सकते हैं। और सम्मति देने का अधिकार केवल गोरक्षकसभासदों ही को होगा।

(अ) गोरक्षकसभासद् बनने के लिये गोकृष्यादिरक्षिणी सभा में वर्ष भर नाम रहने का नियम किसी व्यक्ति के लिये अन्तरङ्गसभा शिथिल भी कर सकती है। इस सभा में वर्ष भर रहकर गोरक्षकसभासद् बनने का नियम गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के दूसरे वर्ष से काम आवेगा।

(ब) राजा, सरदार, बड़े बड़े साहूकार आदि को इस सभा के सभासद् बनने के लिये शतांश ही देना आवश्यक नहीं, वे एकवार वा मासिक वा वार्षिक अपने उत्साह वा सामर्थ्यानुसार दे सकते हैं।

(स) अन्तरङ्गसभा किसी विशेष हेतु से चन्दा न देनेवाले पुरुष को भी गोरक्षकसभासद् बना सकती है।

(द) नीचे लिखी हुई विशेष दशाओं में उन सभासदों की भी, जो गोरक्षकसभासद् नहीं बने, सम्मति ली जा सकती है—

(१) जब नियमों में न्यूनाधिक शोधन करना हो।

(२) जब कि विशेष अवस्था में अन्तरङ्गसभा उनकी सम्मति लेनी योग्य और आवश्यक समझे।

(३) जो इस सभा के उद्देश्य के विरुद्ध कर्म करेगा वह न तो गोरक्षक और न गोरक्षकसभासद् गिना जावेगा।

(४) गोरक्षकसभासद् दो प्रकार के होंगे—एक साधारण और दूसरे माननीय। माननीय गोरक्षकसभासद् वे होंगे जो शतांश वा १०) रु० मासिक वा इससे अधिक देवें, अथवा एक बार २५०) रुपया दें, वा जिनको अन्तरङ्गसभा विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों से माननीय समझे।

५—यह सभा दो प्रकार की होगी—एक साधारण, दूसरी अन्तरङ्ग।

६—साधारणसभा तीन प्रकार की होगी—१ मासिक, २ षाण्मासिक और ३ नैमित्तिक।

७—मासिकसभा—प्रतिमास एक बार हुआ करेगी, उसमें महीने भर का आयव्यय और सभा के कार्यकर्त्ताओं की क्रियाओं का वर्णन किया जावे जो कि कथन योग्य हो।

८—षाण्मासिक सभा—कार्तिक और वैशाख के अन्त में हुआ करे, उस में आप्तोक्त विचार, मासिक सभा का कार्य, प्रत्येक प्रकार का आयव्यय समझना और समझाना होवे।

९—नैमित्तिक सभा—जब कभी मन्त्री, प्रधान और अन्तरङ्गसभा आवश्यक कार्य जाने उसी समय यह सभा हो और उसमें विशेष कार्यों का प्रबन्ध होवे।

१०—अन्तरङ्गसभा—सभा के समस्त कार्यप्रबन्ध के लिये एक अन्तरंगसभा नियत की जावे, और इसमें तीन प्रकार के सभासद् हों—एक प्रतिनिधि, दूसरे प्रतिष्ठित और तीसरे अधिकारी।

११—प्रतिनिधि सभासद् अपने-अपने समुदायों के प्रतिनिधि होंगे और उन्हें उनके समुदाय नियत करेंगे। कोई समुदाय जब चाहे अपने प्रतिनिधि को बदल सकता है। प्रतिनिधि सभासदों के विशेष कार्य ये होंगे:—

(अ) अपने अपने समुदायों की सम्मति से अपने को विज्ञ रखना।

(ब) अपने अपने समुदायों को अन्तरंगसभा के कार्य, जो कि प्रकट करने योग्य हों, बतलाना।

(ज) अपने अपने समुदायों से चन्दा इकट्ठा करके कोषाध्यक्ष को देना।

१२—प्रतिष्ठित सभासद् विशेष गुणों के कारण प्रायः वार्षिक, नैमित्तिक और साधारण सभा में नियत किये जावें। प्रतिष्ठित सभासद् अन्तरंगसभा में एक तिहाई से अधिक न हों।

१३—प्रति वैशाख की सभा में अन्तरंगसभा के प्रतिष्ठित अधिकारी वार्षिक साधारण सभा में फिर से नियत किये जावें, और कोई पुराना प्रतिष्ठित और अधिकारी पुनर्वार नियुक्त हो सकता है।

१४—जब वर्ष के पहिले किसी प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारी का स्थान रिक्त हो, तो अन्तरंगसभा आप ही उसके स्थान पर किसी और योग्य पुरुष को नियत कर सकती है।

१५—अन्तरङ्गसभा कार्य के प्रबन्ध निमित्त उचित व्यवस्था बना सकती है, परन्तु वह नियमों और उपनियमों से विरुद्ध न हो।

१६—अन्तरङ्गसभा किसी विशेष कार्य के करने और सोचने के लिये अपने में से सभासदों और विशेष गुण रखने वाले सभासदों को मिलाकर उपसभा नियत कर सकती है।

१७—अन्तरङ्गसभा का कोई सभासद् मन्त्री को एक सप्ताह के पहिले विज्ञापन दे सकता है कि कोई विषय सभा में निवेदन किया जावे, और वह विषय प्रधान की आज्ञानुसार निवेदन किया जावे। परन्तु जिस विषय के निवेदन करने में अन्तरंगसभा के पांच सभासद् सम्मति दें, वह अवश्य निवेदन करना ही पड़ेगा।

१८—दो सप्ताह के पीछे अन्तरंगसभा अवश्य हुआ करे, और मन्त्री और प्रधान की आज्ञा से वा जब अन्तरंगसभा के पाँच सभासद् मन्त्री को पत्र लिखें, तो भी हो सकती है।

१९—अधिकारी छः प्रकार के होंगे—१ प्रधान, २ उपप्रधान, ३ मन्त्री, ४ उपमन्त्री, ५ कोषाध्यक्ष, ६ पुस्तकाध्यक्ष।

मन्त्री, कोषाध्यक्ष, पुस्तकाध्यक्ष इनके अधिकारों पर आवश्यकता होने से एक से अधिक भी नियत हो सकते हैं। और जब किसी अधिकार पर एक से अधिक भी नियत हों तो अन्तरङ्गसभा उन्हें कार्य बांट देवे।

२०. **प्रधान**—प्रधान के निम्नलिखित अधिकार और काम होवें—

१. प्रधान अन्तरंगसभा आदि सब सभाओं का सभापति समझा जावे।

२. सदा सभा के सब कार्यों के यथावत् प्रबन्ध और सर्वथा उन्नति और रक्षा में तत्पर रहे। सभा के प्रत्येक कार्य्य को देखे कि वे नियमानुसार किये जाते हैं वा नहीं, और स्वयं नियमानुसार चले।

३. यदि कोई विषय कठिन और आवश्यक प्रतीत हो, तो उसका यथोचित प्रबन्ध तत्काल करे, और उसकी हानि में वही उत्तर देवे।

४. प्रधान अपने प्रधानत्व के कारण सब उपसभाओं का, जिन्हें अन्तरंगसभा संस्थापन करे, सभासद् हो सकता है।

२१. **उपप्रधान**—इस के ये कार्य्य कर्त्तव्य हैं—

प्रधान की अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधि होवे। यदि दो वा अधिक उपप्रधान हों तो सभा की सम्मति के अनुसार उनमें से कोई एक प्रतिनिधि किया जावे, परन्तु सभा के सब कार्य्यों में प्रधान को सहायता देना उसका मुख्य कार्य है।

२२. **मन्त्री**—मन्त्री के निम्नलिखित अधिकार और कार्य हैं—

१. अन्तरंगसभा की आज्ञानुसार सभा की ओर से सब के साथ पत्र-व्यवहार रखना।

२. सभाओं का वृत्तान्त लिखना और दूसरी सभा होने से पहले ही पूर्व वृत्तान्त पुस्तक में लिखना वा लिखवाना।

३. मासिक अन्तरंगसभाओं में उन गोरक्षकों वा गोरक्षक-सभासदों के नाम सुनाना जो कि पिछली मासिकसभा के पीछे सभा में प्रविष्ट वा उससे पृथक् हुये हों।

४. सामान्य प्रकार से भृत्यों के कार्य पर दृष्टि रखना, और सभा के नियम, उपनियम और व्यवस्थाओं के पालन पर ध्यान रखना।

५. इस बात का भी ध्यान रखना कि प्रत्येक गोरक्षक-सभासद् किसी न किसी समुदाय में हों, और इसका भी प्रत्येक समुदाय ने अपनी ओर से अन्तरंगसभा में प्रतिनिधि दिया होवे।

६. पहिले विज्ञापन दिये पर मान्यपुरुषों को सत्कारपूर्वक बिठाना।

७. प्रत्येक सभा में नियत काल पर आना और बराबर ठहरना।

२३. **कोषाध्यक्ष**—कोषाध्यक्ष के नीचे लिखे अधिकार और कार्य हैं—

१. सभा के सब आयधन का लेना, उसकी रसीद देना और उसको यथोचित रखना।

२. किसी को अन्तरंगसभा की आज्ञा के विना रुपया न देना, किन्तु मन्त्री और प्रधान को भी उस प्रमाण से देवे जितना अन्तरंगसभा ने उनके लिये नियत किया हो, अधिक न देना। और उस धन के उचित व्यय के लिये वही अधिकारी, जिसके द्वारा वह व्यय हुआ हो, उत्तरदाता होवे।

३. सब धन के व्यय का रीतिपूर्वक बहीखाता रखना, और प्रतिमास अन्तरंग-सभा में हिसाब को बहीखाते समेत परताल और स्वीकार के लिये निवेदन करना।

२४. **पुस्तकाध्यक्ष**—पुस्तकाध्यक्ष के अधिकार और कार्य ये होवें—

१. जो पुस्तकालय में सभा की स्थिर और विक्रय की पुस्तक हों उन सबों की रक्षा करे, और पुस्तकालय सम्बन्धी हिसाब भी रक्खे और पुस्तकों के लेनेदेने का कार्य भी करे।

मिश्रित नियम

२५. सब गोरक्षक-सभासदों की सम्मति निम्नलिखित दशाओं में ली जावे—

१. अन्तरंगसभा का यह निश्चय हो कि किसी साधारणसभा के सिद्धान्त पर निश्चय न करना चाहिये, किन्तु गोरक्षक-सभासदों की सम्मति जाननी चाहिये।

२. सब गोरक्षक सभासदों का पांचवां वा अधिक अंश इस निमित्त मन्त्री के पास पत्र लिख भेजे।

३. जब बहुत से व्ययसम्बन्धी वा प्रबन्धसम्बन्धी नियम अथवा व्यवस्थासम्बन्धी कोई मुख्य विचारादि करना हो अथवा जब अन्तरंगसभा सब गोरक्षक सभासदों की सम्मति जानना चाहे।

२६. जब किसी सभा में थोड़े से समय के लिये कोई अधिकारी उपस्थित न हो, तो उस समय के लिये किसी योग्यपुरुष को अन्तरंगसभा नियत कर सकती है।

२७. यदि किसी अधिकारी के स्थान पर वार्षिक साधारण सभा में कोई पुरुष नियत न किया जावे, तो जब तक उस के स्थान पर नियत न किया जाय, वही अधिकारी अपना काम करता रहे।

२८. सब सभा और उपसभाओं का वृत्तान्त लिखा जाया करे और उसको सब गोरक्षकसभासद् देख सकते हैं।

२९. सब सभाओं का कार्य तब आरम्भ हो, जब न्यून से न्यून एक तिहाई सभासद् उपस्थित हों।

३०. सब सभाओं और उपसभाओं के सारे काम बहुपक्षानुसार निश्चित हों।

३१. आय का दशांश समुदाय में रक्खा जावे।

३२. सब गोरक्षक और गोरक्षक-सभासदों को इस सभा की उपयोगी वेदादि विद्या जाननी और जनानी चाहिये ।

३३. सब गोरक्षक और गोरक्षक-सभासदों को उचित है कि लाभ और आनन्द-समय में सभा की उन्नति के लिये उदारता और पूर्ण प्रेमदृष्टि रक्खें ।

३४. सब गोरक्षक और गोरक्षक-सभासदों को उचित है कि शोक और दुःख के समय में परस्पर सहायता करें, और आनन्दोत्सव में निमंत्रण पर सहायक हों, छोटाई बड़ाई न गिनें ।

३५. कोई गोरक्षक भाई किसी हेतु से अनाथ वा किसी की स्त्री विधवा अथवा सन्तान अनाथ हो जावे अर्थात् उनका जीवन न हो सकता हो, और यदि गोकृष्यादिरक्षिणी सभा उनको निश्चित जान ले, तो यह सभा उनकी रक्षा में यथाशक्ति यथोचित प्रबन्ध करे ।

३६. यदि गोरक्षक सभासदों में किन्हीं का परस्पर झगड़ा हो, तो उनको उचित है कि वे आपस में समझ लेवें, वा गोरक्षक-सभासदों की न्याय उपसभा द्वारा उसका न्याय करालें । परन्तु अशक्यावस्था में राजनीति द्वारा भी न्याय करा लेवें ।

३७. इस गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के व्यवहार में जितना-जितना लाभ हो वह-वह सर्वहितकारी काम में लगाया जावे, किन्तु यह महाधन तुच्छ कार्य में व्यय न किया जावे । और जो कोई इस गोकृष्यादि की रक्षा के लिये जो धन है उसको चोरी से अपहरण करेगा, वह गोहत्या के पाप लगने से इस लोक और परलोक में महादुःखभागी अवश्य होगा ।

३८. संप्रति इस सभा के धन का व्यय गवादि पशु लेने, उनका पालन करने, जङ्गल और घास के क्रय करने, उनकी रक्षा के लिये भृत्य वा अधिकारी रखने, तालाब, कूप, बावड़ी अथवा बाड़ा के लिये व्यय किया जावे । पुनः अत्युन्नत होने पर सर्वहित कार्य में भी व्यय किया जावे ।

३९. सब सज्जनों को उचित है कि इस गोरक्षक धन आदि समुदाय पर स्वार्थदृष्टि से हानि करना कभी मन से भी न विचारें, किन्तु यथाशक्ति इस व्यवहार की उन्नति में तन, मन धन से सदा परम प्रयत्न किया ही करें ।

४०. इस सभा के सब सभासदों को यह बात अवश्य जाननी चाहिये कि जब गवादि पशु रक्षित होके बहुत बढ़ेंगे, तब कृषि आदि कर्म और दुग्ध घृत आदि की वृद्धि होकर सब मनुष्यादि को विविध सुख लाभ अवश्य होगा । इसके बिना सब का हित सिद्ध होना संभव नहीं ।

४१. देखिये, पूर्वोक्त रीत्यनुसार एक गो की रक्षा से लाखों मनुष्यादि को लाभ

पहुँचना, और जिसके मारने से उतने ही की हानि होती है, ऐसे निकृष्ट कर्म के करने को आप्त विद्वान् कभी अच्छा न समझेगा ।

४२. इस सभा के जो पशु प्रसूत होंगे उन उन का दूध एक मास तक उसके बछड़े को पिलाना और अधिक उसी पशु को अन्न के साथ खिला देना चाहिये, और दूसरे मास में तीन स्तनों का दूध बछड़े को देना और एक भाग लेना चाहिये, तीसरे मास के आरम्भ से आधा दुह लेना और आधा बछड़े को तब तक दिया करें कि जब तक गो दूध देवे ।

४३. सब सभासदों को उचित है कि जब जब किसी को स्वरक्षित पशु देवे तब तब न्यायनियमपूर्वक व्यवस्थापत्र ले और देकर । जब वह पशु असमर्थ हो जाय, उसके काम का न रहे और उसके पालन करने में सामर्थ्य न हो, तो अन्य किसी को न दे सके, किन्तु पुनरपि सभा के आधीन करे ।

४४. इस सभा की अन्तरंग सभा को उचित है किन्तु अत्यावश्यक है कि उक्त प्रकार से अप्राप्त पशुओं की प्राप्ति, प्राप्तों की रक्षा, रक्षितों की वृद्धि और बढ़े हुए पशुओं से नियमानुसार और सृष्टिक्रमानुकूल उपकार लेना, अपने अधिकार में सदा रखना, अन्य किसी को इसमें स्वाधीनता कभी न देवे ।

४५. जो कि यह बहुत उपकारी कार्य है इसलिये इसका करनेवाला इस लोक और परलोक में स्वर्ग अर्थात् पूर्ण सुखों को अवश्य प्राप्त होता है ।

४६. कोई भी मनुष्य इस सभा के पूर्वोक्त उद्देशों को किये विना सुखों की सिद्धि नहीं कर सकता ।

३७. क्या ऐसा कोई भी मनुष्य सृष्टि में होगा कि जो अपने सुख दुःखवत् दूसरे प्राणियों का सुख दुःख अपने आत्मा में न समझता हो ।

४८. ये नियम और उपनियम उचित समय पर वा प्रतिवर्ष में यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे वा घटाये बढ़ाये जा सकते हैं ।।

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

धेनुः परा दयापूर्वा यस्यानन्दाद्विराजते ।
आख्यायां निर्मितस्तेन ग्रन्थो गोकरुणानिधिः ।। १ ।।

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे तपस्यस्यासिते दले ।
दशम्यां गुरुवारेऽलंकृतोऽयं कामधेनुपः ।। २ ।।

इति गोकरुणानिधिः ।।